आधुनिक समय में शक्तिपीठों की प्रासंगिकता - नन्दादेवी मंदिर के विशेष संदर्भ में

सचिन आर्या (शोध छात्र)
इतिहास विभाग,
डी0एस0बी0 परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
ई0 मेल - sachinarya1222@gmail.co

शोध सारः- भारत का हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड देवभूमि नाम से प्रसिद्ध है, मान्यतानुसार जहाँ पर तैंतीस कोटी देवी-देवताओं का निवास स्थान माना जाता है। यहाँ पर देवताओं के साथ ही साथ देवियों का महत्वपूर्ण स्थान है जो स्थानीय मंदिरों व शक्तिपीठों के रूप में यहाँ के अलग-अलग क्षेत्रों में स्थित है। इसी उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ मंडल का एक जिला है अल्मोड़ा, जिसे कुमाऊँ की सांस्कृतिक नगरी कहा जाता है, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधताओं को लिए अल्मोड़ा उत्तराखण्ड के कुमाऊँ मंडल का हृदय स्थल माना जाता है जिसके फलस्वरूप इसे उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक राजधानी कहा जाता है। अल्मोड़ा क्षेत्र प्राचीन काल से मानव क्रियाकलाप की कर्मभूमि रहा है जिसमें सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक क्रियाकलापों व नाना प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियों की विविध झलक देखी जा सकती है। अल्मोड़ा में राजनैतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विशेष इतिहास रहा है, जिसमें अनेकता के साथ एकता का आभास होता है क्योंकि अल्मोड़ा में न सिर्फ उत्तराखण्ड के लोगों का निवास है बल्कि बाह्य लोगों ने भी यहाँ बस कर इसे अपनी कर्मभूमि बनाया। अल्मोड़ा स्थित मंदिरों व पयर्टन स्थलों का विशेष महत्व है। जिसमें कुमाऊँ की अधिष्ठात्री देवी नन्दा का सर्वप्रमुख स्थान है, जिनका उत्तराखण्ड की धार्मिक व आध्यात्मिक देवियों में महत्वपूर्ण स्थान है इनके मंदिर उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थानों में देखे जा सकते है। यह मंदिर वर्षों से यहाँ के सांस्कृतिक व धार्मिक परिपेक्ष्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। चन्द काल में स्थापित अल्मोड़ा में स्थित नन्दादेवी मंदिर का विशेष महत्व है। 18वीं शताब्दी में यह मंदिर चंदों द्वारा स्थापित किया गया, चंद वंश के शासक इसे अपनी कुलदेवी के रूप में पूजते थे। जो उनकी शक्ति के साथ ही साथ उनकी धार्मिक विशेषता का भी सूचक है। अल्मोड़ा नन्दादेवी जिसका यहाँ के धार्मिक जीवन

ISSN: 3049-1258

से लेकर सामाजिक जीवन तक प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। प्रतिवर्ष भाद्रपद माह की अष्टमी को नन्दादेवी मंदिर में लगने वाले नन्दादेवी मेले का अल्मोड़ा की धार्मिक, सांस्कृतिक व आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान है। जहाँ पर कुमाऊँ की संस्कृति की विविधता को एक छत्र तले देखा जा सकता है प्रस्तुत शोध पत्र में आधुनिक समय में शक्तिपीठ की प्रासंगिकता - नन्दादेवी मंदिर अल्मोड़ा के विशेष संदर्भ का अध्ययन किया जाएगा।

कुंजी शब्द- नन्दा देवी, धार्मिकता, संस्कृति, रीति-रिवाज, अल्मोड़ा, वास्तुशिल्प, पूजा-पाठ, शक्तिपीठ, आधुनिकता।

प्रस्तावना- भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास में उत्तराखण्ड का विशेष महत्व है, प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र देवी-देवताओं का निवास स्थान माना जाता है। जो सदैव ही धार्मिक, आध्यात्मिक जगत की गतिविधियों का केंद्र रहा है, इसी कारण यह क्षेत्र देवभूमि, तपोभूमि आदि नाना प्रकार के नामों से प्रसिद्ध है। इसी उत्तराखण्ड का एक जिला है, अल्मोड़ा। जिसे कुमाऊँ की हृद्य स्थली व सांस्कृतिक नगरी के नाम से जाना जाता है। यहां स्थित अनेक मंदिर, शक्तिपीठ, देवालय यहाँ की धार्मिक महत्वता को बढ़ाते हैं अल्मोड़ा स्थित मां नन्दादेवी मंदिर यहाँ के देवालयों में अग्रणी स्थान रखता है जो कुमाऊँ की अधिष्ठात्री देवी हैं जिन्हें चंद वंश की कुलदेवी के रूप में पूजा जाता है, यह मंदिर शहर के मध्य में स्थित है। मां नन्दा अल्मोड़ा में ही नहीं बल्कि उत्तराखण्ड की सर्वप्रमुख व सर्वमान्य देवी है, जो कि मां पार्वती का स्वरूप मानी जाती है, जिन्हें उत्तराखण्ड में मां नन्दा के रूप में पूजा जाता है।

मध्य हिमालय उत्तराखण्ड के चमोली गढ़वाल क्षेत्र में उत्तराखण्ड की सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला नन्दादेवी (7817मी0) अवस्थित है। यह उच्चतम पर्वत श्रृंखला मां नन्दादेवी के विराट स्वरूप को जागृत मूर्तरूप में दर्शाती है। इसके पास ही एक शिखर त्रिशुली (7120मी0) को शिव का वास माना जाता है और दूसरे नंदा कोट शिखर (6806मी0) को नंदा की ससुराल (नंदा जागरों में) कहा गया है। त्रिशुली से निकलने वाली नदी का नाम नंदाकिनी और उसके स्रोत प्रदेश का नाम नंदाक, नंदा के नाम पर ही पड़ा है।[1] उत्तराखण्ड में नंदादेवी की व्यापक रूप से पूजा होती है। यहां उमा, पार्वती की अपेक्षा गौरा नाम से अधिक प्रसिद्ध है। फलस्वरूप मध्य हिमालय में देवी, पौराणिक नामों के साथ स्थानीय नाम से लोकप्रिय है, जिसमें नंदा नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है। धार्मिक मान्यतानुसार देवताओं के सेनापति कार्तिकेय की माता शैलेजा-पार्वती ने पशुपति की अराधना व उन्हें पाने के लिए व्रत रखा, जिसे नंदा व्रत कहा गया, मान्यता है कि इसी व्रत के कारण पार्वती नंदा स्वरूप में प्रतिष्ठित हुई। एक धार्मिक मान्यतानुसार गोकुल में यशोदा के घर जन्मी कन्या

ISSN: 3049-1258

जो देवकी के साथ बंदीगृह में थी, को अंहकारी कृष्ण द्वारा जब धरती पर पटककर मारने का प्रयास किया तो वही कन्या योगमाया द्वारा अंर्तध्यान होकर नंदपर्वत शिखर पहुंची और यही चोटी नंदा देवी नाम से प्रसिद्ध हुई।[2] नंदा से जुड़ी मान्यता का

दूसरा पक्ष जो उत्तराखण्ड में मान्य है कि चंद वंश के शासकों की दो बहिने नंदा व सुनंदा जिनकी दुर्घटना में मृत्यु हो गयी थी। हिन्दू धर्म में मान्यता है कि जिस किसी व्यक्ति की मृत्यु यदि दुर्घटना में होती है, तो उसकी आत्मा प्रेत रूप में भटकती रहती है। तब उनकी आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए पूजा-अर्चना का विधान रखा गया और इसके लिए भाद्रपद माह की अष्टमी का दिन चुना गया और केले के पेड़ से दो प्रतिमाएं नंदा व सुनन्दा बनाकर उनमें प्राण प्रतिष्ठा कर विसर्जन का प्रावधान रखा गया। अल्मोड़ा में आज भी चंद वंशजों द्वारा यह कार्य संपन्न किया जाता है। धीरे-धीरे जनमानस आदि शक्ति नंदा व सुनन्दा को एक ही भाव से पूजने लगा है। वस्तुतः उत्तराखण्ड के राजवंशों की कुलदेवी नंदा, गढ़वाल में बेटी व कुमाऊँ में बहन के रूप में पूजी जाती है। जहां एक ओर नंदा से जुड़ी अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक मान्यताएं है, वहीं दूसरी ओर नंदा से जुड़ी अनेक धारणाएं, किंवदंतियां, मिथक व जनश्रुतियां प्रचलित है।[3] ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में रूपमंडन, भविष्यपुराण व दुर्गासप्तशती में नंदा का उल्लेख मिलता है। अल्मोड़ा के अतिरिक्त नंदा के मंदिर कुमाऊँ व गढ़वाल के अनेक स्थानों में विद्यमान है। कुमाऊँ में नयनादेवी मंदिर (नैनीताल), नंदाकोट माई (रणचूलाकोट, बैजनाथ), नंदादेवी मंदिर (दानपुर क्षेत्र) तथा गढ़वाल में नंदा मंदिर (नौटी,चांदपुर), नंदादेवी मंदिर (कुरूड़, दशोली), नंदादेवी मंदिर (लाता, तपोवन), नंदा मंदिर (देवराड़ा, बधाणगढ़ी), नंदा मंदिर (कुलसारी) आदि।

अल्मोड़ा में स्थित नन्दादेवी मंदिर का ऐतिहासिक महत्व है। मध्यकाल में अल्मोड़ा में चंद वंश का शासन था। चंद शासक बाजबहादुर चंद ने गढ़वाल मंडल के चमोली जिले के बाधानगढ़ और लोहवा (लोभा) नामक स्थान पर एक साथ आक्रमण कर, जूनियागढ़ के महत्वपूर्ण किले पर अधिकार कर लिया। उन्होंने अपनी विजय की स्मृति में वहाँ से माँ नन्दा की मूर्ति अपने साथ लाकर उन्हें मल्ला महल के मंदिर में अत्यधिक मानप्रतिष्ठा के साथ स्थापित किया। उनकी सेवा व सुश्रुवा के लिए प्रशिक्षित पुष्प बालिकाएं और सेविकाएं नियुक्त की। उत्तराखण्ड में अंग्रेजी शासनकाल के दौरान कुमाऊँ के द्वितीय कमिनश्नर मि0 जी0 डब्लु0 ट्रेल द्वारा मां नन्दा की मूर्ति को मल्ला महल से लाला बाजार के पास स्थित उद्योत चंदेश्वर मंदिर के पश्चिमी द्वार के सम्मुख ही एक मंदिर बनवा कर रखवा दिया। तब से यही मंदिर मां नन्दादेवी के नाम से प्रसिद्ध है

ISSN: 3049-1258

और यह स्थान नन्दादेवी परिसर के नाम से विख्यात है। अंग्रेजी शासनकाल के दौरान कमिश्नर ट्रेल द्वारा जब मां नन्दा की मूर्ति को मल्ला महल से उद्योत चंदेश्वर मंदिर में स्थापित करवाया, इस संबंध में एक कहानी प्रचलित है कि जब ट्रेल नन्दादेवी शिखर की तरफ जा रहे थे तो अचानक उनकी आंखों की ज्योति क्षीण हो गई। अल्मोड़ा आकर कुछ जानकार लोगों की सलाह पर इन्होंने सन् (1816ई0) में वर्तमान जगह पर मां नन्दादेवी का मंदिर बनवाकर वहां नन्दादेवी की मूर्ति स्थापित करवाई। कहते है उसके उपरांत उनके आंखों की रोशनी वापस आ गई।[4]

नन्दादेवी मंदिर का वास्तुशिल्प-नन्दादेवी मंदिर जिसका निर्माण कुमाऊँ कमिश्नर टे॰ल द्वारा (1816 ई0) में किया गया था। नन्दादेवी मंदिर (40 स्तम्भों) के ऊपर खड़ा है। स्तम्भ 8 पंक्ति में है प्रत्येक पंक्ति में 5 स्तम्भ है। मंदिर की छत चैपखिया है। नन्दादेवी मंदिर को भी सर्वतोभद्र बनाने का प्रयास किया गया है क्योंकि मंदिर में तीन दिशाओं में तीन द्वार और चैथा द्वार के रूप में मंदिर के ठीक पीछे लगा हुआ दीपचंदेश्वर मंदिर की ओर खुला है। स्तम्भों की कतारों के बीचों-बीच वाले चार स्तम्भों के मध्य में नन्दादेवी मंदिर का निर्माण किया गया है। नन्दा देवी मंदिर के सम्मुख है। बांयी ओर हनुमान मंदिर तथा दांयी ओर आनन्द भैरव मंदिर बने हुए है। यह दोनों ही मंदिर दो-दो स्तम्भों में मध्य स्थित है। स्तम्भों का निर्माण बड़े पत्थरों से किया गया। प्रत्येक स्तम्भ के ऊपर चारों ओर को तोरण बनाये गये है। इन तोरणों के ऊपर रखे विशाल पत्थरों द्वारा आपस में जोड़ा गया है। स्तम्भों व दीवारों की बनावट को देखने पर यह प्रतीत होता है। नन्दादेवी मंदिर की स्थापना होने से पहले व दीपचंद्रेश्वर व पार्वतेश्वर मंदिर बनने के बाद धर्मशाला बनाया गया होगा क्योंकि जो दीवारें बनायी गयी है वो स्तंभों के साथ लगी हुई नही है और ना ही स्तभों व दीवारों को साथ-साथ रखने हेतु की गई चिनाई का कोई साक्ष्य दिखता है। वर्तमान में निर्मित धर्मशालाओं में दीवारों रहित स्तंभों के सहारे ही छत का निर्माण किया गया है। छत की झाप भी लंबी है। झाप को सहारा देने के लिए दो-दो फिट की दूरी पर तोरण का निर्माण किया गया है। छत को भी चार द्वार की ओर चार भागों में वर्गीकृत किया गया है। छत निर्माण में लकड़ी का कोई प्रयोग नहीं किया गया है। पत्थरों के द्वारा ही छत का निर्माण किया गया है। जो वास्तुशिल्प की विशिष्ट शैली का उदाहरण प्रस्तुत करते है। पर्यावरण संरक्षण, भूकंप तथा लंबे समय तक सुरक्षा का विशेष ध्यान रख गया है। मंदिर की भीतरी दीवारों पर दोनों ओर से आमने-सामने समान ऊँचाई पर पांच जाव (सामग्री रखने का स्थान) मंदिर के फर्श से एक रद्दा ऊपर मोहरी खिड़की बनी हुई है। छत से ठीक नीचे चारों दीवारों पर धुँए के लिए फैनी बनी हुई है। जावो का प्रयोग रात में दीया जलाकर रखने के लिए किया

जाता होगा और दिन में सामग्री रखने हेतु। पूर्व व पश्चिम दीवार पर फर्श से लगे हुए दो-दो मोहरी दिन के समय उजाले हेतु बनायी गई है।

कुमाऊँ में नन्दादेवी का सांस्कृतिक महत्व

नन्दादेवी मेला- सांस्कृतिक नगरी अल्मोड़ा अपने सांस्कृतिक स्वरूप में लिए विख्यात है। यहां लगने वाले अनेक मेलों में से एक नंदादेवी मेला विशेष है। नंदादेवी मेला उत्तराखण्ड के कई स्थानों पर मनाया जाता है। परंतु अल्मोड़ा का नंदा देवी मेला विश्व विख्यात है। संस्कृति के ही द्वारा मानव अपने व्यक्तित्व को भव्यता एवं सुंदरता प्रदान कर निखारता है। जीवन मे आध्यात्मिकता, सुक्ष्मता व कलात्मक भावनाओं पर आधारित यह संस्कृति व्यैक्तित्व न होकर मानवीय होती है। भारत में मेले का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। मेला शब्द मेल से बना है जिसका अर्थ है मिलना या मिलन। किसी विशेष स्थान, विशेष दिन, तिथि, माह तथा अवसर पर जनसमूह अर्थात् लोगों का एकत्रित होना ही मेला कहलाता है। हमारी स्थानीय भाषा में मेले को कौतिक कहा जाता है। कौतिक शब्द हिन्दी के कौतुक शब्द से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, उल्लास, हर्ष। कौतुक का अपभ्रंश रूप ही कौतिक है जो खुशी व हर्षोल्लास का प्रतीक है।[5] नन्दादेवी मेले का आयोजन अगस्त-सितम्बर माह मे भाद्रपद पंचमी से प्रारंभ होता है। मेले का आरंभ कब हुआ, इस संबंध में अनेक किवदंतियां प्रचलित है। एक दिन चंद शासक दीपचंद कों मां ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि वह अपनी राजधानी अल्मोड़ा में एक मंदिर बनवाकर उसमें एक मूर्ति को प्रतिष्ठापित करे, जो कि मल्ला महल में रखी है। तद्नुसार उन्होंने अपने राजमहल के निकट ही एक मंदिर बनवाकर उसमें मां कि मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया व इसे अपने वंश की कुलदेवी मानकर संपूर्ण राज्य को नन्दाष्टमी को इसका उत्सव मनाने का आदेश दिया तथा अल्मोड़ा में प्रतिष्ठापित मंदिर में स्वंय इसकी पूजा कर तथा

बलि प्रदान कर इसका शुभारंभ किया।[6] नंदा उत्सव की यह परंपरा अब तक यथावत चली आ रही है।

नन्दादेवी मेले के अवसर पर उत्सव की तैयारी के लिए तंत्र-मंत्रों से पूजा-अर्चना कर जगरियों द्वारा देवी का आह्वान किया जाता है। कुमाऊँ की रणचंडी नंदा एवं चंद्रवंशी सुनंदा गौरी की प्रतिमा का निर्माण केले के वृक्ष से होता है।[7] कुमाऊँ की भाद्रपद पंचमी से नंदा उत्सव प्रारंभ होता है। षष्ठी के दिन सुबह शुभलग्नानुसार धार्मिक एवं परंपरागत विधि-विधान से पूजारी, जगरियें एवं श्रद्धाजन नंदा मंदिर के प्रागंण से पूजा की संपूर्ण सामग्री को लिए शंख, ढोल-दमाऊ, नगाड़े व लोकवाद्य यंत्रों की धुनों के साथ मंदिर समिति द्वारा चयनित किसी स्थानीय व्यक्ति के पास बाड़े-बगीचे में केले के वृक्षों को देवी प्रतिमा निर्माण हेतु निमत्रंण करने जाते है। केले के वृक्षों का चयन के

लिए मंदिर समिति या मंदिर के पूजारी पास के किसी स्थानीय व्यक्ति को बोल के आते है। मंदिर समिति मंदिर के समीप सुरक्षित, साफ रास्ते वाले जहाँ पहुंचना आसान हो ऐसे स्थान का चयन करते है। मंदिर के पुजारी श्री हरीशचंद्र उपाध्याय जी बताते है कि वृक्षों को लाने से पहले विशेष बातों का ध्यान दिया जाता है कि वह खंडित ना हो, उसमें फल ना लगा हो, रास्ता साफ हो, वृक्ष को काटना व ले जाना आसान हो। वृक्ष तक पहुचने में श्रृद्धालुओं को कठिनाई ना हो। मेले की पूजा पद्धति अनोखी है चयनित कदली वृक्षों पर लाल, श्वेत वृक्ष बांधकर दीप प्रज्जवलित कर निमंत्रण की प्रक्रिया को पूरा कर श्रद्धालु वापस आ जाते है।

सप्तमी की सुबह पारंपरिक विधि-विधानों के साथ मुख्य पुजारी व धर्माचार्य चंदवंशी कं ुवर अथवा उनके प्रतिनिधि एक साथ कदली वृक्षों के स्थान पर पहुंचते है। वृक्षों पर धूप जला, चंदन, अक्षत लगा कर पूजा-अर्चना की जाती है। पवित्र कदली वृक्षों के तने में एक लाल व दूसरे श्वेत वस्त्र बाधा जाता है। फिर धर्माचार्य वैदिक मंत्रोच्चार के बीच अक्षत (चावल के दाने) मुट्टी में लेकर कदली वृक्ष पर जोर से फेंकते है। खास बात यह है कि मां नंदा के प्रति समपर्ण भाव प्रदर्शित कर कदली वृक्ष का तना हिलने लगता है। माना जाता है कि जो तना पहले हिलता है उसके तने से देवी नंदा, बाद में जो हिलता है उससे सुनंदा, जबकि दोनों के बाद जो तना हिलता है उसका देवी शक्तियों का हाथ पांव बना दिए जाते है। कदली वृक्षों को नंदा सुनंदा के जय घोष के साथ नगर की प्ररिक्रमा कर मुख्य प्रांगण में लाया जाता है। सप्तमी की संध्या मे मूर्ति निर्माण किया जाता है। इसमें सबसे पहले केले के तनों से प्रतिमा की ऊँचाई बनायी जाती है। इस पर कपड़ा चढ़ाकर आकार दिया जाता है। रंगों के प्रभाव के लिए चावल की पिट्ठी, रोली, कुमकुम, सिंदूर, इंगूर एवं उड़द को जलाकर काले रंग के रूप में प्रयोग किया जाता है। ये रंग श्वेत, पवित्र, प्रसन्नता, ज्ञान प्रकाश, दिव्यता, उत्तेजना, वीरता, साहस व सर्वाधिक, श्रृंगारिकता के प्रतीक है। मूर्ति की आंखों के लिए पूर्व में बिस्वार का प्रयोग किया जाता था, लेकिन वर्तमान मे संतुलित श्रृंगार के साथ चांदी की आंखे लगायी जाती है।8 कदली वृक्ष के संबंध में एक कहानी प्रचलित है कि मां नंदा व सुनंदा ससुराल से आ रही थी और उसके कपड़े देख एक भैसा उनकों मारने उनके पीछे पड़ गया। मां नंदा व सुनंदा केले के पेड़ के पीछे छिप गयी, एक बकरा आया, उसने केले के पेड़ से पत्ते खा दिए और मां नंदा व सुनंदा भैसे को दिख गई और उस भैसे ने मां नंदा व सुनंदा को मार डाला। इसलिए मां नंदा व सुनंदा की प्रतिमा को केले के पत्तों से बनाया जाता है। नंदा व सुनंदा की प्रतिमा गोलाकार होती है, पूर्ण रूप से गोल नही होती है। शीर्ष भाग पर बाल काले रंग से बनाए जाते है और सिर पर चांदी का मुकुट पहनाया जाता है। प्रतिमाओं का रंग पीला होता है। सिर पर लाल रंग

 ISSN: 3049-1258

से मांग भरी जाती है। आंख में काले रंग की बड़ी मोटी व लंबी भौं बनायी जाती है। आंखें चांदी की लगाई जाती है। लाल रंग का टीका लगाया जाता है। जो नाक से ऊपर को लगाया जाता है। दोनों गालों पर स्वास्तिक का चिन्ह् बनाया जाता है। होंठ लाल रंग के बनाये जाते है। श्रृंगार के लिए नथ भी पहनाई जाती है। सप्तमी की रात्रि को प्रतिमा निर्माण की प्रक्रिया संपन्न होने के पश्चात् सर्वप्रथम चंदराजवंश के वंशजों द्वारा प्रतिमा की पूजा अर्चना हेतु पुरोहित द्वारा प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठापित किए जाते है, साथ में प्रतिमा की पूजा की जाती है। बलि के साथ सप्तमी के कार्य समाप्त हो जाते है। अष्टमी के दिन प्रतिमा को भक्तों के दर्शन के लिए मुख्य प्रागण में रखा जाता है। महिलाएं व्रत रखती है। मां के दर्शन व पूजा-अर्चना हेतु भक्तों का आना आरंभ हो जाता है। भक्तगण पान, सुपारी, ध्वजा, नारियल, फल-फूल, सुहाग-पिटारी, दीया-बाती आदि से मां की पूजा करते है। अष्टमी को रात्रि की पूजा चंद वंशजों द्वारा की जाती है।

अल्मोड़ा में नंदा का पूजन तांत्रिक विधि से किया जाता है। राजा आनन्द सिंह स्वयं तंत्र विद्या में पारंगत थे और वे स्वयं यह पूजा करते है किंतु उनकी मृत्यु के बाद अब यह पूजा चीचार नामक ग्रन्थ के आधार पर करायी जाती है जो कि नंदा को देवशक्ति तारा का अवतार माना जाने की धारणा के कारण कहा जा सकता है।[9] वर्तमान में भी चंदशासक के वंशज भी अष्टमी की रात्रि को तांत्रिक विधि परंपरा को अपनाते है। अष्टबली के स्थान पर नारियल या भूज का प्रयोग किया जाता है। कुछ वर्षों पहले तक पशुओं की बलि दी जाती थी। "प्राचीन काल में राजा आनन्द सिंह द्वारा लोगों को अनेक गांव दिए थे और हर गांव को मेले के समय अलग-अलग सामग्री लाने का उत्तरादायित्व सौंपा गया था। इस प्रकार मेले के अवसर पर किसी गांव में भैंसा, कही से बकरे, कही से फूल आदि लाये जाते थे।[10] वर्तमान समय में ये सभी सामग्री खरीदी जाती है। नवमी के दिन शाम को पूजा के पश्चात् रात्रि (12 बजे) के लगभग क्षेत्रपाल की पूजा का निर्वाह किया जाता है। बलि प्रथा समाप्त होने से पूर्व तक किसी साधु या व्यक्ति को भोजन व दक्षिणा आदि के साथ बलि के बाद बकरे के सिर या सापेड़ी गंडुवे (पैर जंघाभाग) देकर तंत्र मंत्र के साथ विदाई की जाती है। इस व्यक्ति को इस बात का विशेष ध्यान देना होता है कि वह जाते समय न तो किसी व्यक्ति को छुए और न ही किसी से बात करें तथा वह इस क्षेत्र में न दिखाई दे। इस दिन कन्या पूजन होता है। चंदशासकों के वंशजों द्वारा कन्याओं को भाग भेंट स्वरूप वस्त्र दक्षिणा आदि प्रदान किया जाता है। दशमी की प्रातः मंदिर के मुख्य पुजारी जी द्वारा देवी नंदा एवं सुनंदा पूजा अर्चना की जाती है। पूजा के पश्चात् पुजारी जी खीर बनाते है और स्थानीय लोगों को खीर का भोग लगाते है। वह खीर का प्रसाद श्रद्धालुओं में वितरण किया जाता है। मां नंदा व सुनंदा की विदाई से पूर्व

ISSN: 3049-1258

अर्थात् डोले को उठाने से पहले अष्टबलि दी जाती थी। बकरा नारियल मंदिर के अंदर मां के समक्ष तथा भैसा मंदिर के बाहर परिसर में काटा जाता था। परंतु वर्तमान में बलि प्रथा समाप्त हो चुकी है। केवल नारियल मात्र ही फोड़ा जाता है। डोले की विदाई के समय अल्मोड़ा के छानी, ल्वेशाल के जगरियों द्वारा जागर गाथा की जाती है। गाथा में नंदा की प्रशंसा, उनके द्वारा किया गया दुष्टों का संहार तथा उनके द्वारा किए गए कार्यों का गायन, जागर के रूप में किया जाता है। मां से समस्त प्रदेश को सुख-समृद्धि प्रदान करने, हर व्याधि को हरने रोग-दोष का निवारण खुशहाली प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है। नंदाष्टमी के अवसर पर पूजा के अंग के रूप में दी जाने वाली भैसें की बलि के विषय में अनुश्रुतियां प्रज्ज्वलित है कि ''एक महिष के द्वारा आक्रांत होने पर राजकुमारी ने उसे मार डाला था किंतु दूसरी के अनुसार उस दिन जब राजकुमारी नंदा सुनंदा देवी के दर्शनों को जा रही तो एक राक्षस ने भैसे का रूप धारण कर उसका पीछा करना प्रारम्भ कर दिया। वे भयभीत होकर केले के प्रंज में पीछे छिप गई। एक बकरी ने आकर केले के पत्तों को चर लिया। महिषसुर ने उन्हें वहां देखकर उन्हें मार डाला इसलिए इस अवसर पर महिष और अष्ट बलियां दी जाती है।[11] डोले को मंदिर परिसर में घुमाया जाता है। डोले में आगे चंदशासकों मे वंशज लगे रहते है और फिर पुजारी डोला व पीछे से मंदिर समिति के लोग व छोलिया बाजे वाले लगे रहते है और पीछे से श्रद्धालुओं का जत्था। यह डोला मंगल, वृहस्पति और शनिवार को छोड़कर अन्य दिन उठता है। अर्थात् हमारे यहां स्थानीय परंपरा है कि मंगल, गुरुवार और शनिवार को घर से कहीं भी जाना अशुभ माना जाता है। माँ नंदा सुनंदा के जयघोष के साथ डोला मुख्य बाजार से डोयडी पोखर के सामने रखा जाता है। ''यहां राजवंशीय रानी मंदिर से प्रतिमाओं की तथा राजा सड़क से मंदिर की पूजा करते है।[12] शिखर होटल से होते हुए पेट्रोल पम्प व फिर लोहे के **शेर के रास्ते पुनः** मुख्य बाजार में प्रवेश कर डोले को आर्मी केंट हाउस में रोका जाता है। इस स्थान पर अंतिम रूप में मूर्तियों/प्रतिमाओं की पूजा अर्चना की जाती है और इन्हें विदाई दी जाती है।

नंदा जागरः नंदा जागर का आयोजन मेले के आरंभ के दिन पंचमी से शुरू हो जाता है। जागर के गायन वाले अल्मोड़ा के छानी ल्वेशाल के निवासी है। जो प्रत्येक वर्ष मेले के आयोजन पर आते है। गायन की दृष्टि से इस गाथा में मुख्तयः दो विशिष्ट पद्धतियां मिलती है।

1. जागर शैली और

2. फाग शैली13

1. जागर शैली में द्रत, मध्य और विलिम्बित तीन प्रकार की लयो का प्रयोग होता है।

2. फाग शैली में केवल विलम्बित लय मिलती है। अल्मोड़ा में प्रचलित नंदा जागर गाथाओं में विशिष्ट

है ''कथा विकास की दृष्टि से इसके कथानक को छह भागों में विभक्त किया जा सकता है। नैलोल, जलोकार, पंखी पख्याण, बाल ईश्वर, बाली नंदा और महिषासुर।[14]

ननौल: ''नंदा जागर में सबसे पहले गाया जाता है। नंदा को (निमंत्रण भेजने) वाले गीतों को नौल कहा जाता है।[15]

जलोकार:''जनौल के बाद जलोकर द्वितीय स्थान पर गाया जाता है। जलोकार का तात्पर्य है। जलमग्नता। गाथा में उत्पत्ति के विषय में उल्लेख है।[16]

पंखी प्रख्याण:''इसमें जन जीवन की उत्पत्ति में विषय में वर्णन है।[17]

बाल ईश्वर: ''बालईश्वर अर्थात् वीरता की कहानी।[18]

बाली नंदा: ''बाली नंदा की कहानी विवाह के पश्चात्।[19]

महिषासुर दैत्य: माँ नंदा व महिषासुर के मध्य युद्ध का वितरण।[20]

इसके पश्चात् श्रद्धालु डोले को विसर्जन हेतु दुगालखोला नौले ले जाते है। प्रतिमाओं के विसर्जन के पूर्व मंदिर समिति के सदस्य प्रतिमा के कीमती आभूषणों को निकाल सुरक्षित रख लेते है। कदली वृक्ष के तीन भाग एवं केले के पत्तों के जिन भाग से मूर्ति का निर्माण किया जाता है । दो भागों को नोले के पानी में विसर्जित किया जाता है। जबकि एक भाग को प्रसाद स्वरूप भक्तगणों में बांट दिया जाता है। आखिर बार आरती के साथ नारियल तोड़कर प्रतिमाओं को विसर्जित किया जाता है। भक्तगण खाली डोले को जय घोष के साथ वापिस लाकर मंदिर प्रांगण में रख देते है।

मेले के आयोजन के दिन पंचमी से ही मंदिर प्रांगण व बाजार सज-धज जाती है। इसी दिन नंदा महोत्सव में रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन होने लगता है। स्थानीय स्कूल, कॉलेज व अन्य स्थानों के कलाकारों द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के बच्चों की प्रतियोगिता कराई जाती है। सांस्कृतिक कार्यक्रम में झोड़ा, न्योली, भगनौल, बैर व छपेली आदि लोकगीत प्रस्तुत किए जाते है। ये सांस्कृतिक कार्यक्रम दिन भर चलते रहते है। रात्रि को विशेष कार्यक्रम होते है। लोक गीतों व नृत्यों तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा हमारे प्रदेश उत्तराखण्ड की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, पारिस्थितियों का आभास कराते है तथा विल्पुत होते हमारे पांरपरिक वेश-भूषा, संगीत, वाद्ययंत्र को संजोए रखने में सहयोग करते है। मेले में लगने वाले बाजार में बच्चों से लेकर बुढ़ों तक सभी को स्थानीय व विदेशी सामग्री उपलब्ध हो जाती है। जैसे -स्त्रियों का शृंगार का सामान, बच्चो के लिए खिलौने, बड़े बुढ़ों के लिए अपनी आवश्यक वुस्तुएं। परंतु अब मेले ने आधुनिकता का रूप धारण कर लिया है और स्थानीय वस्तुओं की उलपब्धता कम दिखाई देती है।

नंदाजात राजजातः- ''यह भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी, जिसे नन्दाष्टमी के नाम से जाना जाता है को नंदादेवी के उपलक्ष्य में की जाने वाली एक देवी यात्रा है। जिसे कुमाऊँ के अल्मोड़ा तथा गढ़वाल के सीमांत जनपद चमोली की कन्या की विदाई के रूप में मनाया जाता है। यहां के लोगों की आस्था है कि कैलाशवासी शिव को पति के रूप वरण करने वाली नंदा (पार्वती) इसी क्षेत्र की पर्वतीय कन्या थी, जो प्रतिवर्ष अपनी ससुराल त्रिशुल पर्वत (बधाण) से श्रावणमास में कुछ दिनों के लिए अपने बंधु-बांधवों से मिलने के लिए अपने मायके चांदपुर आती है और नंदाष्टमी के कुछ दिन पूर्व वृद्ध नर-नारी उसे यथावश्वक भेंट सौगात के साथ स्नेहपूर्वक ससुराल के लिए विदा करते हैं। इस वार्षिक अनुष्ठान को नन्दाजात कहा जाता है किंतु इसके अतिरिक्त प्रति बारह वर्ष के बाद यहां के राजवंशीय कुंवरों के द्वारा उसे ससुराल भेजने को जो समारोहात्मक विशिष्ट राजकीय आयोजन किया जाता है। उसे नंदाराजात (नंदा की राजकीय पात्र) के नाम से जाना जाता है।[21] ''लोक गीतों एवं लोक पंरपराओं के अनुसार यह यात्रा आठवीं सदी से शुरू हुई है।[22] ''इस प्रकार की सामूहिक राजजात यात्रा के कुछ रिकाॅर्ड उपलब्ध है जिसके अनुसार 1843, 1863, 1885, 1905, 1925, 1951, 1968, 1987 में यह यात्रायें हुई, इसलिए पिछली नंदा राजजात यात्रा का आयोजन 2014 में किया गया। इन सबका प्रबंधन राजकुँवरों की ओर से नहीं राज्यप्रशासन की ओर से किया जाता है।[23] 12 वर्षों में अंरातल में यात्रा का आयोजन किया जाता है। ''राजजात की तिथि, पता करना, राज छतोली का शुभारंभ तथा पद प्रदर्शन में मेढ़े का चयन नौटी गाँव में होता है। नौटी के नंदा मंदिर में स्थापित श्रीयंत्र की पूजा अर्चना के बाद की राजजात यात्रा प्रारंभ होती है। इसकी तरफ कुरूड़ के शक्तिपीठ से नंदा की दो डोलियां दशोली तथा बधाण से निकलती है। एक अन्य डोली दशमद्वार से निकलती है।[24] राजजात यात्रा में चोसिंगा, मेढ़ा व छतोली विश्व विख्यात है। छतोली का निर्माण रिगांल से किया जाता है और नंदा देवी की स्वर्ण प्रतिमा में युक्त होती है। यात्रा का पथ नौटी गांव से प्रस्थान करने के बाद यात्रात्र के मार्ग पड़ने वाले पड़ाव कारवां, महादेव, भट, चाँदपुगढ़ी, उमोली, सिमतोली, कोटी, चराली से आगे नन्दकेसरी पर कुमाऊँ व गढ़वाल के छतीलों का संगम स्थल है। दोनों संस्कृतियों का संगम भी कह सकते है। छतोले अगल-अलग स्थान पर स्थित नंदा मंदिरों से आते है और भिन्न-भिन्न पड़ावों पर मिलते है। अल्मोड़ा से भी छतोल बनाई जाती है नंदा मंदिर में पूजा अनुष्ठान किया जाता है। अल्मोड़ा में माला, छानी-ल्वेशाल, लाठू मंदिर से होते हुए गरूड़ बैजनाथ में कोटभ्रामरी से होते हुए गढ़वाल के नंदकेसरी में कुमाऊँ और गढ़वाल की राजजात का संगम होता है। यहां से साथ यात्रा प्रस्थान करती है। ''लोहाणगढ़, बाण, दूसरे आगे

कठिन स्थल है। रिंकी, कैलगंगा, गैरोलीयातल, वैतरिणी कुंड वनस्पतिहीन कैलाविनायक, होमकुंड तक जाती है।[25] इससे आगे मेढ़े को छोड़ दिया जाता है और मेढ़े द्वारा आगे की यात्रा अकेली की जाती है। राजजात यात्रा (280कि0मी0) की रोमांचक और दुर्गम पैदल यात्रा है।

धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व- नन्दा देवी का कुमाऊँ में धार्मिक महत्वतता के साथ ही साथ सांस्कृतिक महत्व भी उल्लेखनीय है। कुमाऊँ की धार्मिक आस्था रीति-रिवाज के साथ सांस्कृतिक क्रियाकलाप भी परस्पर धर्म व संस्कृति से जुड़े हुए हैं। चूँकि नन्दा देवी में सुबह व सांय काल को रोजाना पूजा-पाठ का चलन है, जहाँ पर देवी की पूजा ढोल-दमाऊ के साथ की जाती है, वही इसका विशिष्ट स्वरूप नन्दा देवी मेले के दौरान देखने को मिलता है जहाँ पर देवी की परम्परागत पूजा-पद्धति के साथ ही साथ कुमाऊँनी संस्कृति का भी संगम देखने को मिलता है, जिनमें जहाँ धार्मिक पर्वो पर निकलने वाली कलश यात्राओं को भी देखा जा सकता है, जिसमें महिलाएं सामूहिक रूप से पारंपरिक वस्त्र व आभूषण धारण कर सिर पर जल कलश के साथ संपूर्ण बाजार में भ्रमण करती है। मेले के दौरान स्थानीय व बाह्य कलाकार लोकगीत, लोकनृत्य व गायन द्वारा एक अलग ही छटा बिखेरते है। इसी के साथ स्थानीय महिलायें नन्दादेवी मेले के दौरान पारम्परिक परिधानों के साथ मंदिर प्रांगण मे कुमाऊँनी झोड़ा-चांचरी के साथ माता की स्तुति करती हैं उल्लेखनीय है इस झोड़ा चांचरी में महिलाएं व पुरूष दोनों मिलकर गायन करते है, उदाहरण स्वरूप-

खौल दे माता खोल भवानी धार में कैवाड़ा,
कै लारै छै भेंट पखोवा कै खौलू कैवाड़ा,
गौरी गंगा भागीरथी को कै भलौ कैवाड़ा।।

स्थानीय भाषा में लिखित इस झोड़े की पंक्तियाँ यहाँ की धार्मिकता के साथ ही साथ सांस्कृतिक पहलुओं को भी उजागर करती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम, रीति-रिवाज, पारम्परिक मान्यतायें, धार्मिक आस्था इन सभी का एक साथ एक जगह पर मिलन, इस मेले व मन्दिर को विशिष्टता प्रदान करते है।

पर्यटन के दृष्टिकोण से महत्व- सर्वविदित तथ्य है अल्मोड़ा नगर की भौगोलिक स्थिति यहाँ के प्रत्येक पहलू में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है चाहे वह सामान्य जनजीवन के रूप में हो या फिर बाहर से आने वाले लोगो के लिए पर्यटन स्थल के रूप में। वर्षो से अल्मोड़ा बाहरी आगुन्तकों को अपनी ओर आकर्षित करते आया है। जहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता तो स्वतः ही पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है, साथ ही जहाँ की धार्मिक आस्था भी लोगों को जोड़ने में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है। अल्मोड़ा आने वाले पर्यटकों को नन्दा देवी मन्दिर स्वतः ही अपनी ओर खींच लेता है। इसकी देवीय शक्तियां, वास्तुकला व स्थानीय बाजार से लगा हुआ यह मन्दिर, पर्यटकों

ISSN: 3049-1258

के आकर्षण का केन्द्र स्थल है। प्रत्येक वर्ष देश-विदेश से हजारों पर्यटक इस मन्दिर के दर्शन करने आते हैं।

आर्थिक दृष्टिकोण- किसी भी स्थान की भौगोलिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक पृष्ठभूमि वहां के आर्थिक पहलू का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। नन्दा देवी मन्दिर अल्मोड़ा प्राकृतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक दृष्टि के साथ ही साथ आर्थिक दृष्टि से भी काफी महत्तवता रखता है। उक्त महत्वता का सीधा संबंध यहाॅ के स्थानीय निवासियों की आर्थिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतः मंदिर परिसर के अंदर चढ़ने वाली भेंट-चढ़ावे का उपयोग भंडारे, मंदिर प्रशासन, जीर्णोद्वार, निर्माण कार्य व पंडित, पूजारियों के आजीविका में ही देखा जाता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर भी इस मन्दिर का आर्थिक दृष्टिकोण उल्लेखनीय है, जैसे स्थानीय बाजार से लगा हुआ यह मन्दिर व्यापारियों के लिए काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि बाह्यी लोग मंदिर दर्शन के साथ ही साथ बाजार भ्रमण कर इन लोगों को रोजगार प्रदान करने का कार्य करते हैं साथ ही मेले के दौरान लगने वाली दुकानें से कई लोगों को रोजगार मिलता है जो इसके आर्थिक पक्ष का एक महत्वपूर्ण तथ्य हैं।

आधुनिक समय में नन्दादेवी मंदिर की प्रासंगिकता-देवभूमि उत्तराखण्ड की हिमालय पर्वत श्रृंखला में कूर्मांचल क्षेत्र कुमाऊँ अपने नैसर्गिक सौंदर्य के कारण विश्व प्रसिद्ध है। यहां की हरी भरी घाटियों, पर्वतों चोटियों पर अनेक छोटे-बड़े गाँव कस्बे व नगर बसे हुए है। जिनमें सांस्कृतिक नगरी अल्मोड़ा का प्रमुख स्थान है। अल्मोड़ा अपने प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के लिए प्रसिद्ध है। अल्मोड़ा नगर के लाला बाजार के ऊपर पहाड़ी पर स्थित नंदादेवी मंदिर समूह, अल्मोड़ा की धार्मिक आस्था का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। वर्तमान समय में अल्मोड़ा देश-विदेश में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। जिसका एक कारण नन्दादेवी मंदिर अल्मोड़ा भी है। यदि हम इस मन्दिर की वर्तमान प्रासंगिकता की बात करें तो पाते है नन्दादेवी मंदिर व इसका परिसर आज धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण केन्द्र है मेले, रामलीला, भजन-कीर्तन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक अवसरों जैसे नवरात्रि, स्थानीय लोक पर्व आदि-आदि का केन्द्र आज भी नन्दा देवी मन्दिर है। जहाँ पर विभिन्न अवसरों पर धर्म व संस्कृति का संगम देखने को मिलता है। आधुनिकता के दौर में आज जहाँ लोग अपनी संस्कृति रीति-रिवाजों को पीछे छोड़ रहे है नन्दादेवी मेला इन रीति-रिवाजों व अपनी संस्कृति को आज भी जीवंत रखे हुए है, जो आने वाली पीढ़ी के लिए एक प्रेरणादायक स्रोत है जिसे देख युवा वर्ग को अपनी संस्कृति व धरोहरों को आगे बढ़ने की निरंतर सीख मिलती है साथ ही दूर-दूर से

गाॅव-घरों से लोग आकर अपनी कला व हुनर का प्रर्दशन इस मेले के दौरान करते है, इन प्रतियोगिताओं के साथ प्रोत्साहन के लिए मंदिर प्रशासन व जिला प्रशासन की तरफ से भी इनाम राशि व अन्य प्रोत्साहन का आयोजन किया जाता है। शहर के बीचों-बीच स्थित होने के कारण समय-समय पर यहां धार्मिक व सामाजिक सभाओं का आयोजन किया जाता रहता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय उत्सवों जैसे स्वतंत्रता दिवस, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर को आयोजित होने वाली बच्चों की प्रभातफेरियों का शुभारंभ भी इसी परिसर से होता है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः कहा जा सकता है आधुनिक दौर में जहाँ आज समाज व देश-दुनिया पाश्चात्य जगत की तरफ आकर्षित हो रही है, जिससे कहीं न कहीं हमारी लोक संस्कृति, मान्यता, धार्मिकता का हनन होता नजर आता है जो किसी भी सभ्य समाज के धरोहरों का पतन होना ही माना जाता है। वर्तमान समय में नन्दा देवी अल्मोड़ा आध्यात्मिक व पयर्टन का महत्वपूर्ण केन्द्र है, जहाँ पर होने वाले विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक क्रियाकलापों में स्थानीय लोक संस्कृति की झलक आज भी स्पष्ट नजर आती है। आज आवश्यकता है लोग इन मेलों, लोक पर्वो पर इन रीति-रिवाजों का निरंतर पालन कर आने वाली पीढ़ी के लिए अपनी धरोहरों को सहेजने का काम करें, जिससे आज की युवा पीढ़ी आधुनिकता के साथ ही साथ अपनी लोक संस्कृति, रीति-रिवाजों, संस्कृति के साथ जीवन में अग्रसर होकर एक नई ऊर्जा के साथ जीवन में अग्रसर हो सकें। इसी के साथ जहाॅ आज भागदौड़ भरे जीवन में व्यस्तता के चलते लोग निरन्तर अवसाद का शिकार हो रहे हैं वहीं कहीं न कहीं यह मन्दिर व्यक्ति के अन्दर एक सकारात्मक ऊर्जा का प्रसार करता है। प्रस्तुत अध्ययन में देखा जा सकता है नन्दादेवी मंदिर अल्मोड़ा आज भी धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व आध्यात्मिक रूप से अपनी प्रासंगिकता को सिद्ध करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

(1) उनियाल, हेमाः मानसखण्ड (कुमाऊँ इतिहास, धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन)ः उत्तरा बुक्स, दिल्लीः 2014, पृष्ठ45 ।
(2) स्कंदपुराण, अध्याय, 22/7,8 ।
(3) मानसखण्ड, वही, पृष्ठ46 ।
(4) डसीला, इन्द्र सिंहः अल्मोड़ा का इतिहास और कुमाऊँः अल्मोड़ा किताब घर, अल्मोड़ाः 2016, पृ0111 ।
(5) अग्रवाल, चंद्रमोहनः अनावृत्त मध्यहिमालयः इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2010, पृ075 ।
(6) शर्मा, डॉ0 डी0 डी0 उत्तराखण्ड कोश, भाग-2 अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ0 388-389 ।
(7) अग्रवाल, चंद्रमोहनः अनावृत्त मध्यहिमालयः इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2010, पृ044 ।
(8) शर्मा, डॉ0 डी0डी0, वही पृ0388 ।
(9) अग्रवाल, चंद्रमोहन, वही, पृ046 ।
(10) शर्मा, डॉ0 डी0डी0, वही, पृ0390 ।
(11) अग्रवाल, चंद्रमोहन, वही, पृ048 ।
(12) वही, पृ048 ।
(13) पोखरिया, डॉ0 देवसिंहः नन्दा जागरः शिवम् आर्ट्स, लखनऊ, 1995, पृ0गअपपप

(14) वही, पृ0गअपप ।
(15) वही, पृ01 ।
(16) वही, पृ01 ।
(17) वही, पृ02 ।
(18) वही, पृ010 ।
(19) वही, पृ014 ।
(20) वही, पृ017 ।
(21) शर्मा, डा॓0 डी0डी0, पृ0379 ।
(22) बलोदी, अरविंद प्रसादः उत्तराखण्डः समग्र ज्ञानकोश, बिनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून, 2010, पृ0269 ।
(23) भट्ट, त्रिलोक चन्द्र, उत्तराचंल के देवालय, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या-216।
(24) बलोदी, अरविंद, वही, पृ0240 ।
(25) शर्मा, डॉ0 डी0 डी0, वही, पृ0385 ।
(26) साक्षात्कार- हरीशचंद्र उपाध्याय, उम्र-60वर्ष, पूजारी, नन्दादेवी मंदिर, अल्मोड़ा, 19 अप्रैल, 2024।